प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय : बिलासपुर

रिट याचिका क्रमांक: 2689/2006

प्रशांत दवे

बनाम

श्रीमती शकुंतला देवी

आदेश

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

आदेश के लिए नियत: 14/12/2016

सही/–

सुनील कुमार सिन्हा

न्यायाधीश

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय : बिलासपुर

रिट याचिका क्रमांक: 2689/2006

प्रशांत दवे

बनाम

श्रीमती शकुंतला देवी

उपसंजात:

श्री रविश चंद्र अग्रवाल, वरिष्ठ अधिवक्ता सहित श्री संजय एस. अग्रवाल, अधिवक्ता याचिकाकर्ता/वादी के लिए।

श्री बी. पी. शर्मा, अधिवक्ता उत्तरवादी/प्रतिवादी के लिए।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

आदेश
(14.12.2006)

सुनील कुमार सिन्हा, जे.

(1) भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर इस रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता/वादी ने जिला न्यायाधीश, रायपुर द्वारा विविध व्यवहार अपील क्रमांक 1/2006 में पारित दिनांक 21.3.2006 (अनुलग्नक –पी/9) के आदेश की वैधानिकता, वैधता और औचित्यता को चुनौती दी है, जहा विचारण न्यायालय द्वारा अस्थायी निषेधाज्ञा देने से इनकार करने वाले दिनांक 6.2.2006 (अनुलग्नक–पी/8) के आदेश के खिलाफ दायर याचिकाकर्ता की अपील खारिज कर दी गई थी ।

(2) संक्षिप्त में तथ्य यह है कि दिनांक 12.1.2006 को याचिकाकर्ता ने स्वयं को प्रतिवादी का किरायेदार बताते हुए, उत्तरवादी/प्रतिवादी को वादग्रस्त दुकान के अपने कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा हेतु वाद दायर किया था। वादपत्र में अभिवचन किया गया है कि यह दुकान वादी के पूर्वजो द्वारा बहुत पहले किराए पर ली गई थी और वर्तमान में वादी उक्त दुकान में 'स्वाद संगम' के नाम से व्यवसाय चला रहा है। दिसंबर 2005 के महीने में, प्रतिवादी, विशेष रूप से श्री सुनील नागरानी और श्री किशोर नागरानी द्वारा वादी को उक्त दुकान खोलने से

रोका गया और उसने पाया कि उसकी दुकान का साइन बोर्ड हटा दिया गया था। दिनांक 20.12.2005 को मामले की सूचना पुलिस को दी गई। जब पुलिस द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई, तो वादी को उपखंड मजिस्ट्रेट के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के तहत कार्यवाही दायर करनी पड़ी और अंततः इस आवेदन पर, वादी के पक्ष में यथा स्थिति का आदेश दिया गया। बाद में, दिनांक 10.1.2006 को प्रतिवादी द्वारा दुकान के शटर तोड़ दिए गए और प्रतिवादी ने वादी का कब्ज़ा लेने की कोशिश की, जिससे स्थायी निषेधाज्ञा के लिए तत्काल वाद दायर करने के कारण पैदा हुआ। उक्त व्यवहार वाद के साथ, वादी ने वाद के लंबित रहने के दौरान प्रतिवादी को उसके कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए एक अस्थायी निषेधाज्ञा का आवेदन भी दायर किया। प्रतिवादी ने उक्त आवेदन का उत्तर प्रस्तुत करते हुए अन्य बातों के साथ–साथ यह अभिवचन किया कि वास्तव में, वाद दायर होने की तिथि पर वादी का वाद परिसर पर कब्जा नहीं था और प्रतिवादी का उस पर बहुत पहले से कब्जा है। प्रतिवादी ने यह अभिवचन किया कि उसने दिनांक 26.7.2002 को वाद परिसर खरीदा था और परिसर खाली करने के लिए वादी से उसके अनुरोध पर, वादी ने नवंबर, 2005 में इस शर्त के साथ सहमति व्यक्त की कि उसे उक्त दुकान के फर्नीचर और अन्य संलग्न वस्तुओ के लिए 2,50,000/– रुपये का भुगतान किया जाएगा, तभी वह प्रतिवादी को उक्त दुकान का कब्जा सौंपेगा। इस पर, प्रतिवादी ने नवंबर, 2005 में वादी को 2,50,000/– रुपये का भुगतान किया और दुकान का खाली कब्जा उसके द्वारा ले लिया गया। इसलिए, कब्जे के संबंध में उसकी विशिष्ट अभिवचन यह है कि वह नवंबर, 2005 से उक्त दुकान पर कब्जा कर रही है।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(3) विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों को सुनने के बाद, अस्थायी निषेधाज्ञा प्रदान करने के आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया कि वादी अपने पक्ष में प्रथम दृष्टया मामला स्थापित नहीं कर सका क्योंकि वह वाद परिसर पर अपने कब्जे के संबंध में कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं कर पाया । विचारण न्यायालय ने यह भी माना कि सुविधा संतुलन और अपूरणीय क्षति जैसे अन्य दो प्रश्न भी वादी के पक्ष में नहीं जाते और वादी अस्थायी निषेधाज्ञा का हकदार नहीं है।

(4) सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43 नियम 1(आर) के अंतर्गत दायर एक विविध अपील में, अपीलीय न्यायालय ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया और याचिकाकर्ता की अपील यह कहते हुए खारिज कर दी कि वाद प्रस्तुत करने की तिथि पर याचिकाकर्ता वादग्रस्त दुकान पर काबिज नहीं था, इसलिए वह अस्थायी निषेधाज्ञा का हकदार नहीं है और अस्थायी निषेधाज्ञा देने से इनकार

करने वाला विचारण न्यायालय का आदेश न्यायसंगत और उचित था। इसी आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता/वादी ने यह याचिका दायर की है।

(5) मैंने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को विस्तार से सुना है तथा रिट याचिका के अभिलेखों का भी अवलोकन किया है

(6) याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री रवीश अग्रवाल ने तर्क दिया कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के तहत **दोराब कावासजी वार्डन बनाम कूमी सोराब वार्डन एवं अन्य (1990) 2 एससीसी 117** के मामले में, और इस मामले में प्रचलित तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में, याचिकाकर्ता के पक्ष में एक अंतरिम अनिवार्य निषेधाज्ञा प्रदान की जानी चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय में यह माना है कि अंतर्वर्ती आज्ञापक निषेधाज्ञा की राहत सामान्यतः लंबित विवाद से पहले की अंतिम निर्विवाद यथास्थिति को अंतिम सुनवाई तक बनाए रखने या बहाल करने के लिए दी जाती है, जब तक कि पूर्ण अनुतोष प्रदान नहीं की जा सकती, या अवैध रूप से किए गए कार्यों को रद्द करने या शिकायतकर्ता से गलत तरीके से ली गई संपत्ति को वापस लेने के लिए बाध्य करने के लिए दी जाती है। लेकिन चूँकि किसी ऐसे पक्ष को ऐसा निषेधाज्ञा प्रदान करना, जो वाद में अपना अधिकार स्थापित करने में विफल रहता है या विफल होने वाला है, उस पक्ष के साथ बहुत बड़ा अन्याय या अपूरणीय क्षति का कारण बन सकता है जिसके विरुद्ध यह प्रदान की गई थी, या वैकल्पिक रूप से किसी ऐसे पक्ष को इसे प्रदान न करना जो सफल होता है या सफल होने वाला है, समान रूप से बहुत बड़ा अन्याय या अपूरणीय क्षति का कारण बन सकता है, इसलिए न्यायालयों ने कुछ दिशानिर्देश विकसित किए हैं। सामान्यतः ये दिशानिर्देश इस प्रकार हैं:

(i) वादी के पास वाद के लिए एक प्रबल वाद है। यानी, यह उस प्रथम दृष्टया मामले से कहीं ज़्यादा ऊँचा स्तर का होना चाहिए जो आमतौर पर निषेधात्मक व्यपदेश के लिए ज़रूरी होता है।

(ii) यह अपूरणीय या गंभीर क्षति को रोकने के लिए आवश्यक है, जिसकी सामान्यतः धन के रूप में भरपाई नहीं की जा सकती।

(iii) सुविधा का संतुलन ऐसी अनुतोष चाहने वाले के पक्ष में है

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

हालाँकि, उक्त निर्णय के कंडिका 17 में, सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि चूँकि यह अनिवार्य रूप से एक न्यायसंगत राहत है, इसलिए किसी अंतर्वर्ती आज्ञापक व्यपदेश का प्रदान या अस्वीकार करना अंततः न्यायालय के विवेक पर निर्भर करेगा, जिसका प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में किया जाएगा। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि यद्यपि उपरोक्त दिशानिर्देश न तो संपूर्ण हैं और न ही पूर्ण या निरपेक्ष नियम हैं, और कुछ असाधारण परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनमें कार्रवाई की आवश्यकता हो, फिर भी ऐसे निषेधाज्ञा प्रदान या अस्वीकार करने के लिए इन्हें पूर्वापेक्षा के रूप में लागू करना न्यायिक विवेक का एक अच्छा प्रयोग होगा।

(7) श्री अग्रवाल ने बताया और यह इस मामले में एक स्वीकृत तथ्य भी है कि वर्तमान व्यवहार वाद से पहले, प्रतिवादी द्वारा दिनांक 19.6.2003 को घोषणा और स्थायी निषेधाज्ञा के लिए एक और व्यवहार वाद दायर किया गया था जिसमें प्रार्थना की गई थी कि वादी को किराए के परिसर में कोई भी निर्माण करने से रोका जाना चाहिए। उन्होंने तर्क दिया कि उक्त व्यवहार वाद में पक्षों के बीच किरायेदारी स्वीकार की गई थी। हालांकि, उक्त वाद को दिनांक 07.5.2005 को उपस्थिति के आभाव में खारिज कर दिया गया था। उनका कहना है कि जब वर्ष 2003 में किरायेदारी स्वीकार की गई थी, तो पट्टे की समाप्ति के किसी भी सबूत के अभाव में, इसे अंतिम अविवादित स्थिति माना जाना चाहिए और वादी को अंतर्वर्ती आज्ञापक व्यपदेश देकर इसे बहाल किया जाना चाहिए। उन्होंने संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 111 का हवाला देते हुए कहा कि किसी एक समय पर विद्यमान माने जाने वाले पक्षों के बीच पट्टे की समाप्ति का कोई साक्ष्य नहीं है । उन्होंने दृढ़तापूर्वक इस बात पर बल दिया कि उक्त धारा के उप–खण्ड (च) (छ) के प्रावधानों के अनुसार, व्यक्त या निहित समर्पण द्वारा पट्टे के निर्धारण को साबित करने के लिए कोई प्रथम दृष्टया साक्ष्य नहीं है, इसलिए, वादी के पक्ष में एक प्रबल प्रथम दृष्टया वाद था, जिसे विचारण न्यायालयों ने नजरअंदाज कर दिया है।

(8) दूसरी ओर, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री बी.पी. शर्मा ने तर्क दिया कि ऐसे मामलों पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत विचार नहीं किया जा सकता। उन्होंने उपरोक्त कथन के समर्थन में **ओसेफ मथाई एवं अन्य बनाम एम. अब्दुल खादिर, (2002) 1 एससीसी 319 और स्टेट थ्रू स्पेशल सेल, नई दिल्ली बनाम नवजोत संधू उर्फ अफशान गुरु एवं अन्य (2003) 6 एससीसी 641 और सूर्य देव राय बनाम राम चंद्र राय (2003) 6 एससीसी 675** के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय प्रस्तुत किये ।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(9) *ओसेफ मथाई मामले (पूर्वोक्त)* में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि अनुच्छेद 227 उन सभी न्यायालयों और न्यायाधिकरणों पर अधीक्षण का अधिकार प्रदान करता है जिनके संबंध में उच्च न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, लेकिन किसी वादी को उक्त अनुच्छेद के तहत क्षेत्राधिकार का उपयोग करने का कोई समतुल्य अधिकार प्रदान नहीं किया गया है। वस्तुतः, इस अनुच्छेद के अंतर्गत प्रदत्त शक्ति उच्च न्यायालय पर यह कर्तव्य डालती है कि वह विचारण न्यायलयो और न्यायाधिकरणों को उनके अधिकार की सीमाओं के भीतर रखे और यह सुनिश्चित करे कि वे सीमाओं का उल्लंघन न करें, तथा यह सुनिश्चित करे कि ऐसी न्यायालयें और न्यायाधिकरण ऐसे न्यायालयों और न्यायाधिकरणों का सृजन करने वाले अधिनियमों के दायरे में शक्तियां प्रदान करने वाले विधि के अनुसार अपने कर्तव्यों का पालन करें। केवल गलत निर्णय ही इस अनुच्छेद के अंतर्गत क्षेत्राधिकार के प्रयोग का आधार नहीं हो सकते, जब तक कि गलती अधीनस्थ न्यायालयों और न्यायाधिकरणों द्वारा कर्तव्य की घोर उपेक्षा और शक्ति के घोर दुरुपयोग से संबंधित न हो, जिसके परिणामस्वरूप किसी पक्ष के साथ घोर अन्याय हो।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(10) *राज्य द्वारा स्पेशल सेल, नई दिल्ली बनाम नवजोत संधू उर्फ अफशान गुरु (पूर्वोक्त)* के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से अभिनिर्धारित किया कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 227 उच्च न्यायालय को उन सभी न्यायालयों और न्यायाधिकरणों पर अधीक्षण की शक्ति देता है जिनके संबंध में वह अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है। यह क्षेत्राधिकार राज्य विधान–मंडल के किसी अधिनियम द्वारा सीमित या बाधित नहीं किया जा सकता है। पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार अधीनस्थ न्यायाधिकरणों को उनके अधिकार की सीमाओं के भीतर रखने और यह देखने के लिए विस्तारित है कि वे विधि का पालन करते हैं। अनुच्छेद 227 के तहत शक्तियां व्यापक हैं और न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उपयोग में लाये जा सकते है। उनका उपयोग एक अंतर्वर्ती आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए भी किया जा सकता है। तथापि, अनुच्छेद 227 के अंतर्गत शक्ति एक विवेकाधीन शक्ति है और उच्च न्यायालय के आदेश को ऐसी शक्ति का स्रोत मानना कठिन है, जब उच्च न्यायालय स्वयं ऐसी किसी विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने का दावा नहीं करता है। यह स्थापित विधि है कि न्यायिक अधीक्षण की इस शक्ति का प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए तथा इसका प्रयोग केवल अधीनस्थ न्यायालयों और न्यायाधिकरणों को उनके अधिकार की सीमाओं के भीतर रखने के लिए किया जाना चाहिए, न कि केवल त्रुटियों को सुधारने के लिए। इसके अलावा, जहां विधि पुनरीक्षण शक्तियों के प्रयोग पर प्रतिबंध लगाता है, वहां अनुच्छेद 227 के तहत हस्तक्षेप करने के लिए बहुत ही असाधारण परिस्थितियों की आवश्यकता होगी, क्योंकि

अधीक्षण की शक्ति का उद्देश्य वैधानिक विधि को दरकिनार करना नहीं है। यह स्थापित विधि है कि अनुच्छेद 227 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग "अपील की आड़ में छद्म रूप से" नहीं किया जा सकता।

(11) एक अन्य मामले अर्थात *सूर्य देव राय (पूर्वोक्त)* में, सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से माना कि संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति हमेशा उसको प्रदत्त पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के अतिरिक्त होती है। 1999 के संशोधन अधिनियम 46 द्वारा धारा 115 व्य. प्र. सं. के तहत उच्च न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में कटौती, किसी व्यवहार न्यायालय को उत्प्रेषण रिट जारी करने के उच्च न्यायालय के संवैधानिक क्षेत्राधिकार को नहीं छीनती है और न ही छीन सकती थी, न ही संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय को प्रदत्त अधीक्षण की शक्ति छीनी गई है या कम की गई है। यह शक्ति, धारा 115 सीपीसी में संशोधन से अप्रभावित, विद्यमान है और स्व-अनुशासन और व्यवहार के सुस्थापित नियमों के अधीन प्रयोग के लिए उपलब्ध है।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(12) अनुच्छेद 227 के तहत प्रदत्त पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार की प्रकृति और ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग करके गलत निर्णय को सही करवाने के किसी पक्षकार के अधिकारों की सीमाओं के बारे में इस न्यायालय के मन में कोई संदेह नहीं है। यदि अधीनस्थ न्यायालयों और न्यायाधिकरणों द्वारा कर्तव्य की घोर उपेक्षा और शक्ति के घोर दुरुपयोग के परिणामस्वरूप किसी पक्षकार के साथ घोर अन्याय हुआ हो, तो इस न्यायालय को किसी गलती को सही करने का पूर्ण क्षेत्राधिकार प्राप्त है। हालाँकि, वर्तमान वाद जैसे मामले में, जहाँ उच्च न्यायालय का पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार संशोधन अधिनियम 46, 1999 द्वारा छीन लिया गया है, अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग आत्म-अनुशासन और व्यवहार के नियम के अधीन किया जाना है।

(13) वर्तमान वाद ऐसा नहीं है जिसमें वादी ने विचारण न्यायालय में अस्थायी आज्ञापक व्यपदेश के लिए प्रार्थना की हो। यह ऐसा वाद भी नहीं है जिसमें वादी यह कह रहा हो कि वाद दायर करने की तिथि पर वह वाद परिसर पर किरायेदार के रूप में काबिज था और वाद के लंबित रहने के दौरान प्रतिवादी की कार्रवाई के कारण उसे बेदखल कर दिया गया था और बदले हुए परिदृश्य में, न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अस्थायी आज्ञापक व्यपदेश आवश्यक हो गई है। यदि हम वादपत्र और निषेधाज्ञा आवेदन दोनों का परीक्षण करें, तो ऐसा प्रतीत होता है कि वादी का दावा है कि वाद परिसर पर उसका बहुत पहले से कब्जा है और वाद का कारण तब उत्पन्न हुआ जब प्रतिवादी ने विभिन्न तरीकों से वादी को बेदखल करने का प्रयास किया और उसे अपनी

बेदखली की आशंका है। इसी परिदृश्य में, विचारण न्यायालय ने यह आदेश पारित किया है कि वाद दायर करने की तिथि पर वादी का वाद परिसर पर कब्जा नहीं था; इसलिए, वह अस्थायी निषेधाज्ञा की राहत का पात्र नहीं है। उच्च न्यायालय के समक्ष यह पहली बार आया है कि इस मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, उच्च न्यायालय को अस्थायी आज्ञापक व्यपदेश का आदेश पारित करके अपने अधीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना चाहिए। हालाँकि, यहाँ भी वादी ने अस्थायी आज्ञापक व्यपदेश का आदेश प्राप्त करने के लिए यह अभिवचन नहीं दिया है और न ही न्यायालय के ध्यान में लाया है कि वादी ने कब कब कब्ज़ा खो दिया या उसे कैसे बेदखल किया गया। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा *दोराब कावासजी वार्डन मामले (पूर्वोक्त)* में प्रयुक्त "अंतिम निर्विवाद स्थिति" जैसे वाक्यांश का प्रयोग हमेशा उस स्थिति के संदर्भ में होता है जो लंबित विवाद से ठीक पहले की थी, न कि उसके बाद की। प्रस्तुत वाद में, श्री अग्रवाल ने पूर्ववर्ती मामले की याचिका का हवाला देते हुए तर्क दिया है कि वादी वर्ष 2003 में प्रतिवादी का किरायेदार था और यदि उसे बलपूर्वक बेदखल किया गया है, तो वर्ष 2003 में किरायेदारी के अस्तित्व के संबंध में पक्षकारों के बीच उक्त स्वीकृति के आधार पर उसका कब्जा बहाल किया जाना चाहिए, जो बाद में भी जारी रहा। इस न्यायालय की राय में, इसे "अंतिम निर्विवाद स्थिति" नहीं माना जा सकता क्योंकि यह एक पुरानी स्थिति थी और वास्तव में, वादी यह नहीं बता सका कि यह स्थिति कब समाप्त हुई और प्रतिवादी ने उसे जबरन बेदखल कर दिया। बल्कि विचारण न्यायलयो के समक्ष उसका वाद यह था कि वह अभी भी परिसर पर कब्जा बनाए हुए था और उसके कब्जे को संरक्षित किया जाना चाहिए। अभिलेख में रखे बिना अंतरिम आज्ञापक व्यपदेश के संबंध में प्रार्थना, पक्षकारों के बीच अंतिम अविवादित स्थिति के बारे में तथ्य, इसकी तिथि आदि को वादी द्वारा सद्भावपूर्ण और स्वच्छ व्यवहार नहीं माना जा सकता है, जो उच्च न्यायालय के समक्ष पहली बार दावा किए गए ऐसे राहत को प्रदान करने के लिए आवश्यक है।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(14) विचारण न्यायालय के साथ–साथ प्रथम अपीलीय न्यायालय ने भी यह मत व्यक्त किया कि वादी यह सिद्ध नहीं कर सका कि वाद प्रस्तुत करने की तिथि पर परिसर पर उसका कब्जा था, इसलिए निषेधाज्ञा आवेदन खारिज कर दिया गया। अपीलीय न्यायालय ने यह भी माना कि जब अनुविभागीय दण्डाधिकार द्वारा वाद प्रस्तुत करने से पहले ही वादी के पक्ष में यथास्थिति का आदेश दिया जा चुका था, तो उक्त आदेश ही वादी के पास अपने कब्जे की रक्षा के लिए पर्याप्त हथियार था और उस आदेश का उपयोग न करना तथा उसमें अंतरिम निषेधाज्ञा की प्रार्थना करते हुए स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वाद दायर करना, अपने आप में प्रथम दृष्टया यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि वास्तव में, वादी का वाद प्रस्तुत करने की तिथि से पहले परिसर पर कब्जा नहीं

था और वह अस्थायी निषेधाज्ञा की अनुतोष का हकदार नहीं था इस परिदृश्य में, वादी पहली बार इस न्यायालय के समक्ष एक आज्ञापक अस्थायी व्यपदेश का दावा कर रहा है, बिना अपनी बेदखली से संबंधित अभिवचनो को अभिलेख पर लाए, समय और तरीके के संदर्भ में ताकि इस न्यायालय को उसके पक्ष में ऐसा आदेश पारित करने की आवश्यकता के बारे में अवगत कराया जा सके, जिसे यह *न्यायालय, दोराब कावासजी वार्डन (पूर्वोक्त)* के मामले में निर्धारित सिद्धांतों के आधार पर, वर्तमान मामले को एक असाधारण वाद मानते हुए पारित कर सकता है। इस न्यायालय की राय में, विचारण न्यायालय के साथ–साथ प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अस्थायी निषेधाज्ञा को अस्वीकार करके सही किया है और यह वाद असाधारण वाद की श्रेणी में नहीं आता है ताकि इसे *दोराब कावासजी वार्डन (पूर्वोक्त)* के मामले के निर्णय में उल्लेखित अपवादों के अंतर्गत लाया जा सके।

(15) यह वाद भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत इस न्यायालय के हस्तक्षेप का पात्र नहीं है। याचिका सारहीन है। इसे खारिज किया जाता है।

(16) कोई वाद व्यय नहीं दिया जायेगा।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

सही/–
सुनील कुमार सिन्हा
न्यायाधीश

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**

Translated By Shobhit Banerjee